CHETANA
International Journal of Education
Impact Factor
SJIF-5.689
Peer Reviewed/
refereed Journal
ISSN-
Print-2231-3613,
Online-2455-8729

Prof.A.P.Sharma (25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 23rd April 2020, Revised on 27th April 2020; Accepted 29th April 2020

आलेख

संस्कृत धर्मशास्त्र में निहित शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता

* **नेहा व्यास,** शोधार्थी
** **डॉ.बी.एल.श्रीमाली**, शोध निर्देशक
शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड-टू-बी-विश्वविद्यालय) प्रतापनगर उदयपुर (राज.) 2020
ईमेल– ……………………………………., *मोबाईल* – ....

मुख्य शब्द - वैदिक शिक्षा, आधुनिक शिक्षा, भारतीय धर्म शास्त्र, भारतीय शैक्षिक दर्शन *आदि.*

संक्षेप

वैदिक साहित्य को हमारे जीवन का एक अभिन्न हिस्सा माना जाता है। वैदिक शिक्षा भारत की संस्कृति और समृद्ध विरासत का मूल आधार है। शैक्षिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह शिक्षा की एक व्यापक प्रणाली के निर्माण में मदद करती है। शिक्षा में नई प्राथमिकताएं मठवासी विद्वानों, यथार्थवादी, आदर्शवादी और व्यावहारिक प्रवृत्तियों के प्रभाव के साथ उभरी हैं। जबकि शिक्षण संस्थान विकसित हुए हैं, शैक्षिक संस्थानों द्वारा प्रस्तावित दार्शनिक आदर्शों और उनके रोजमर्रा के कामकाज के बीच कई अंतराल हैं। शिक्षा के एक व्यापक दर्शन को प्राप्त करने के लिए, सिद्धांत रूप में और कार्रवाई में अंतराल को पाटने की तत्काल आवश्यकता को सामने लाता है। यह अध्ययन **"संस्कृत धर्मशास्त्र में निहित शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता"** के महत्व के बारे में है। इस अध्ययन की आवश्यकता आधुनिक युग में संस्कृत धर्मशास्त्र की वर्तमान में प्रासंगिकता बनाने के लिए है | यह अध्ययन आधुनिक पीढ़ी को आश्वस्त कर सकता है कि इंद्रियों पर पूर्ण निपुणता के उच्च आदर्श को प्राप्त करने के लिए, सत्य के आदर्श, स्वतंत्रता के आदर्श, समानता के आदर्श और शांति और एकता के आदर्श को खड़ा करने के लिए हमें संस्कृत धर्मशास्त्र की शिक्षा के आदर्शों को स्वीकार करने की आवश्यकता है। नैतिक भावना का समुचित विकास एवं चरित्र का निर्माण धर्मशास्त्र की शिक्षा का मूल उद्देश्य हैं। धर्मशास्त्रीय शिक्षा ने मनुष्य की आदर्श प्रकृति को विकसित करने के लिए उसे एक निश्चित नैतिक भावना प्रदान और उसे अपने मूल पशु स्वभाव को नियंत्रित करने के लिए सक्षमता प्रदान की हैं। पुरुष एक सामाजिक प्राणी हैं, धर्मशास्त्रीय शिक्षा ने न केवल सामाजिक कर्तव्यों पर जोर दिया बल्कि आध्यात्मिक सुख को भी बढ़ावा दिया है और अपने पूरे शोध प्रस्ताव में मैं इस पर ध्यान केंद्रित करूँगी |

प्रस्तावना

आधुनिक समय में शिक्षा को रोजगार से जोड़ा गया है, न कि वर्तमान समाज में ज्ञान से। रोजगार की संभावनाओं की कमी के कारण धर्मशास्त्रीय वैदिक प्रणाली मर रही है। नैतिक शिक्षा वैदिक शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं । प्राचीन समय में गुरुकुलों का कार्य, न केवल लोगों को ज्ञानवान बनाना था, बल्कि उन्हें अच्छी तरह से सुसंस्कृत बनाना था । हालांकि, औद्योगिकीकरण के साथ, मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि धर्मशास्त्रीय वैदिक शिक्षा ने अपनी जड़ें खो दी हैं। हम तेजी से वैज्ञानिक और तकनीकी परिवर्तन के युग में रह रहे हैं, हम इस बात से भी इंकार नहीं करते हैं कि इस तरह के बदलावों का समाज के भीतर और अलग-अलग सामाजिक समूहों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। हमने भौतिक जीवन की तलाश में सत्य के आदर्शों की अनदेखी की है। धर्मशास्त्रीय वैदिक शिक्षा के सिद्धांत संसार की सभी शैक्षिक प्रणाली के लिए प्रेरणा का स्रोत रहे हैं। इन दिनों यह आधुनिक संस्थानों के लिए एक बड़ी समस्या बन गई है कि छात्रों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए और नैतिक मूल्यों को कैसे लागू किया जाए, क्योंकि अनुशासनहीनता के कारण शैक्षिक वातावरण इतना विषैला हो गया है कि यह आधुनिक छात्रों के लिए आत्म अनुशासन का कोई अर्थ नहीं है। आत्म अनुशासन का ज्ञान अपने कौशल में सुधार के लिए उपयोग में ले सकते हैं लेकिन हमने इसे केवल मनोरंजन के उद्देश्य से उपयोग करके इसे हानिकारक बना दिया है। कुछ छात्र नैतिक रूप से परिपूर्ण नहीं हैं और वे गैर जिम्मेदार व्यवहार करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि यह जीवन के भौतिकवादी मोड का प्रभाव है या हो सकता है माता-पिता द्वारा अनुचित देखभाल का एक प्रभाव हो सकता है या यह समाज में परिवर्तन और परिवार के माहौल में बदलाव का प्रभाव हो सकता है। धर्मशास्त्रीय शिक्षा के वैदिक आदर्शों में लोगों के मन तथा उनके विचारों को बदलने की प्रवृत्ति होती है। इसमें बुरे को अच्छे में बदलने की प्रवृत्ति होती है। क्योंकि धर्मशास्त्रीय वैदिक शिक्षा का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्र का विकास करना है । यदि आधुनिक छात्र इंद्रियों पर पूर्ण निपुणता प्राप्त करना चाहता है तो उसे धर्मशास्त्रीय वैदिक शिक्षा के आदर्शों का पालन करना होगा। यह संसार जीवन की इच्छाओं से भरा पड़ा है, लेकिन आत्मा की मुक्ति के लिए स्वयं की पूर्ण प्राप्ति के लिए नहीं है । नैतिक शिक्षा मुझे धर्मशास्त्रीय शिक्षा के महत्व को प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है, क्योंकि नैतिक शिक्षा से ही मनुष्य को सभ्य, सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। नैतिक शिक्षा के अनुसार मनुष्य अच्छे और बुरे में अंतर करने में सक्षम हो सकता है। आधुनिक युग में जीवन की जड़ समस्या भौतिकवादी विधा का अनुकूलन है । इन दिनों जीवन पूरी तरह से दिखावे और आधुनिकता से भरा हो गया है। वेदों के अनुसार, शिक्षा का महत्वपूर्ण पहलू व्यक्ति को सच्चा होने के लिए प्रशिक्षित करना है क्योंकि सत्य की राह पर चलने वाली श्रेष्ठ आत्मा कभी पराजित नहीं होती है। भारतीय परिदृश्य ने स्वतंत्रता के बाद की धर्मशास्त्रीय शिक्षा को मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से मौलिक संरचनात्मक के परिवर्तन के रूप में देखा है। आज के वैश्वीकरण युग में, ज्ञान तेजी से एक वस्तु के रूप में राष्ट्र और व्यक्ति के बीच चलता है। जबकि धर्मशास्त्रीय ज्ञान पर आधारित दार्शनिक विश्लेषणों की वृद्धि शिक्षा प्रणाली में आधुनिक दर्शन के आधुनिक वैश्विक परिदृश्य में सफल होने की राष्ट्र की क्षमता स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस परिप्रेक्ष्य के साथ धर्मशास्त्रीय ज्ञान भारत में शैक्षिक दर्शन के मुद्दों को आंतरिक क्षमता को आकार देने में एकीकृत दृष्टिकोण के संदर्भ में परिवर्तनों पर प्रकाश डालती है |

भारतीय शैक्षिक दर्शन की पृष्ठभूमि भारतीय जीवन दर्शन और विचार की प्रमुख विशेषताएं आध्यात्मिक मूल्यों की खोज पर आधारित हैं जो अस्तित्व की एकता, मनुष्य की दिव्यता और पंथों और धर्मों के सामंजस्य पर बल देती हैं। दूसरी ओर, शैक्षिक

दर्शन की पश्चिमी परंपराएं समाज में उसकी उपयोगिता के अनुसार आदमी के मूल्य को मापने के लिए जीवन के व्यावहारिक दृष्टिकोण पर जोर देती हैं |

धर्मशास्त्रीय शिक्षा का भारतीय दर्शन सार्वभौमिक मानवता और आध्यात्मिकता की भावना पैदा करने के सार को महत्व देता है। सार्वभौमिक मानवता की भावना के अहसास से प्रेरित जीवन के प्रारूप को विकसित करने की आवश्यकता है। आधुनिक संसार में परिवर्तनों का सामना करने और इक्कीसवीं सदी में शिक्षार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए, धर्मशास्त्रीय शिक्षा के भारतीय दर्शन को भविष्य और भविष्य के लिए शिक्षार्थियों को तैयार करने के लिए अतीत और वर्तमान के बीच उचित संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं में विविधता का उत्सव मनाने की आवश्यकता की ओर उन्मुख करता है ।

संस्कृत धर्मशास्त्र का परिचय

धर्मशास्त्र को स्मृति साहित्य के रूप में भी जाना जाता है "स्मृति" शब्द दो अर्थो में प्रयुक्त हुआ है | एक अर्थ में यह वाङ्गमय से इतरगंर्थो तथा पाणिनी के व्याकरण , श्रौत, गृह् एवं धर्मसूत्रों, महाभारत, मनु, याज्ञवल्क्य एवं अन्य ग्रन्थों से सम्बन्धित है | किन्तु संकीर्ण अर्थ में स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है | स्मृति शब्द का अर्थ - स्मृतियां संस्कृत साहित्य में भारतीय धर्मशास्त्रों का विशिष्ट अंग मानी जाती है। धर्मशास्त्र में धर्मसूत्रों के पश्चात् स्मृतियों का ही स्थान है। 'स्मृति' शब्द की उत्पत्ति स्मृ + क्तिन् धातु में प्रत्यय लगने से हुई है जिसका अभिप्राय है- स्मरण करना। स्मृति श्रुति का समकक्ष शब्द है। वेद श्रुति हैं क्योंकि वेद श्रवण परम्परा से अनादि काल से प्रचलित रहे हैं। इसी प्रकार स्मरण परम्परा से जिन शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं एवं आचार-संहिताओ को जीवन्त रखा जाना ही स्मृति है। अर्थात् ब्रह्मा आदि के द्वारा स्मरण कर लिखे गये ग्रन्थ स्मृति कहलाते हैं।

वस्तुतः स्मृतियाँ विशेष रूप से वेदों के अर्थों का प्रतिपादन करती हैं। इनके अर्थ परम्परा द्वारा सूत्रकाल से पहले सामाजिक व्यवस्थाओं में विधि-विधान और आचार-विचार जो मौखिक रूप से संरक्षित होते आ रहे थे उन्हीं को ग्रन्थ रूप में जब लिपिबद्ध किया गया था तब उन्हें स्मृति कहा गया। श्रुति और स्मृति में विभाजन ब्राह्मण ग्रन्थों तथा भारतीय साहित्य में सूत्रों की मान्यता से पूर्व हुआ।

वेदों को प्रमाण रूप में प्रथम स्थान पर माना गया है स्मृति तथा पुराण को बाद का माना गया है। स्मृति की महत्ता को बताते हुए महर्षि अत्रि ने यह स्पष्ट किया – "अगर कोई मनुष्य सम्पूर्ण वेदों का पठन करके स्मृतियों को न पढ़े तो वह व्यक्ति पशु के समान होता है अर्थात् पशुता को ही प्राप्त होता है" ।

स्मृतियों के सम्बन्ध में गौतम और बौधायन ने स्मृति को वेदज्ञों का स्मरण माना है। स्मृति का अभिप्राय पी॰ वी॰ काणे के मतानुसार वाङ्मय से अन्य ग्रन्थों जैसे-पाणिनीय व्याकरण श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्रों, महाभारत, मनुस्मृति, और याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ग्रन्थों से है । किन्तु सामान्य रूप से स्मृति का अर्थ मनु स्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों से ही लिया गया है।41

स्मृति साहित्य के अन्तर्गत निम्नलिखित साहित्य पाया जाता है :-

1. मनुस्मृति 2. याज्ञवल्क्यस्मृति 3. पराशरस्मृति 4. नारदस्मृति

5. अंगीरास्मृति 6. दक्षस्मृति 7. पितामहस्मृति 8. यमस्मृति 9. व्यासस्मृति

इन प्रमुख स्मृतियों का परिचय कुछ इस प्रकार है –

मनुस्मृति

मनुस्मृति का रचना एवं काल निर्धारण करना बहुत मुश्किल है। अनेक विद्वानों ने जैसे व्यूलर, जायसवाल, काणे, मजूमदार आदि ने मनुस्मृति का रचनाकाल अपने-अपने अनुसार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। वी॰एन॰ माण्डलिक आदि विद्वानों ने मनुस्मृति को महाभारत से लिया है, ऐसा मानते हैं। क्योंकि मानव धर्मशास्त्र का उल्लेख बारहवें व तेहरवें अध्याय में हुआ है। अतः यह रचना महाभारत कालीन हो सकती है। अयंगर मनुस्मृति को कौटिल्य अर्थशास्त्र से पुरानी मानते हैं। मैक्सङकर मनुस्मृति का रचनाकाल 600 ई॰ पूर्व स्थिर करते हैं। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं की मनुस्मृति का वर्तमान स्वरूप द्वितीय शताब्दी ई॰ पू॰ तक का हो सकता है।

मनुस्मृति में वर्णित विषय - भारतीय साहित्य में "मनुप्रोक्त स्मृति" का कई नामों में उल्लेख मिलता है जैसे - मनुस्मृति, मनुसंहिता और मानव धर्मशास्त्र आदि। यह संस्कृत साहित्य में रचनाकाल से ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाणिक एवं लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है।

स्मृतियों में इसका सर्वोच्च स्थान है। यही कारण है कि परवर्ती काल में अनेक स्मृतियाँ जैसे याज्ञवल्क्य, विष्णु एवं नारद स्मृतियाँ प्रकाश में आई। भारतीय साहित्य में सामाजिक विधान तथा लौकिक नियमों का वर्णन धर्मशास्त्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों के माध्यम से हुआ है। परन्तु सर्वाधिक प्रतिष्ठित मनुस्मृति ही है। इसमें वर्णाश्रम धर्मों के रूप में व्यक्ति एवं समाज के लिए हितकारी धर्मों, नैतिक कर्तव्यों, मर्यादाओं, आचरणों के वर्णन के साथ ही समाज-व्यवस्था के लिए विधानों-कानूनों का निर्धारण भी है। इस प्रकार यह व्यक्ति एवं समाज के लिए धर्मशास्त्र के साथ-साथ आचार शास्त्र भी है तथा सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को सुचारू रूप से रखने के लिए संविधान भी है। अतः स्पष्ट है कि मनुस्मृति एक ऐसा कोश है जिसमें हर समस्या का निदान है। महाकवि कालिदास ने मनुस्मृति की महिमा पर प्रकाश डाला है। रघुवंश के राजाओं द्वारा पालित प्रजा मनु द्वारा बताये मार्ग से उसी प्रकार रेखांकित होती है जिस प्रकार निर्धारित मार्ग से रथ की नेमि विच्युत नहीं होती।

मनुस्मृति की प्राचीनता के विषय में यूरोप के विद्वान भी यह स्वीकारते हैं कि मनु संहिता सर्वप्रथम और प्राचीन विधि नियम है। जर्मन के प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रेडरिक नील्से ने भी मनुस्मृति को मानव से महामानव बनाने वाला ग्रंथ घोषित किया है और कहा भी है कि "close the Bible and open the code of Manu"

शकुन्तला राव शास्त्री मनुस्मृति को प्राचीन एवं आधुनिक विधानशास्त्रियों के बीच की कड़ी मानती है। अतः यह लगभग सौ करोड़ व्यक्तियों के नैतिक और धार्मिक कार्यों का मार्गदर्शक है।

मनुस्मृति पर कूल्लूक भट्टरचित मन्वर्थमुक्तावली सबसे प्रसिद्ध टीका है। इसके अतिरिक्त अन्य टीकायें भी उपलब्ध हैं जैसे- गोविन्दराज की मन्वाश्यानुसारिणी, मणिराम दीक्षित की सुबोधिनी, नन्दनाचार्य की नन्दिनी एवं नारायण सर्वज्ञ की मन्वर्थ वृतिका। मनुस्मृति के प्रथम भाष्यकार 'मेंधातिथि ने 'मनुभाष्य' नामक टीका लिखी है।

मनु स्मृति में जीवन सम्बन्धित प्रत्येक पक्ष का उल्लेख किया गया है। इसमें बारह अध्याय 2694 श्लोक हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति

स्मृति साहित्य में मनुस्मृति के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण स्मृति याज्ञवल्क्य स्मृति है। यह मनुस्मृति के बाद की रचना है लेकिन मनुस्मृति की अपेक्षा अधिक व्यवहारिक है। क्योंकि इसमें विशिष्ट तथ्यों के साथ विषयवस्तु का विधिवत् विभाजन किया गया है। गणेश और ग्रहों की पूजा भी इस स्मृति की विशेषता है।

याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा छोटी है। मनुस्मृति में 2700 श्लोक हैं जबकि इसमें एक हजार श्लोक हैं। शैली की दृष्टि से याज्ञवल्क्य स्मृति संक्षिप्त और प्रवाहमय है। पी॰ वी॰ काणे के मतानुसार याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति से अधिक सुगठित है। इससे स्पष्ट हैकि याज्ञवल्क्य स्मृति बाद की है। महाभारत के शान्तिपर्व और शतपथ ब्राह्मण में यह बतलाया है कि याज्ञवल्क्य वैशम्पायन के शिष्य थे। वैशाम्पायन से ही उन्होंने यजुर्वेद का अध्ययन किया।

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने अपने प्रथम श्लोक में लिखा है कि याज्ञवल्क्य के किसी शिष्य ने धर्मशास्त्र को संक्षिप्त करके कथोपकथन रूप में लिखा है। परम्परा से इस स्मृति को याज्ञवल्क्य की रचना माना जाता है। यद्यपि विज्ञानेश्वर ने इसको याज्ञवल्क्य के शिष्य की रचना कहा है।

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में विकास की दृष्टि से याज्ञवल्क्य स्मृति का विशेष योगदान रहा है। मानव जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विशेष महत्व रहा है। इसके बिना समाज और मनुष्य का विकास होना सम्भव नहीं है। इन पुरुषार्थों की विवेचना ही विषय वस्तु है। यह वृत्ति प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं वैधानिक पद्धति को विवेचित करती है। याज्ञवल्क्य स्मृति में अनेक ऐसे विषयों का प्रतिपादन हुआ है जिनका वर्णन मनुस्मृति में भी मिलता है। अतः याज्ञवल्क्य स्मृति एक सम्पूर्ण धार्मिक ग्रन्थ है। इसका महत्त्व हिन्दू समाज में वर्तमान युग में भी लागू है। याज्ञवल्क्य स्मृति तीन अध्यायों में विभाजित है। यें हैं- आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित।

पराशरस्मृति

पाराशरस्मृति के प्रणेता भगवान् वेदव्यास के पिता ऋषि पराशर हैं, जिन्होंने चारों युगों की धर्मव्यवस्था को समझकर सहजसाध्य रूप धर्म की मर्यादा निर्दिष्ट | है बताया प्रमुख ही को दानधर्म में कलियुग तथा है की (निर्देशित)पाराशरस्मृति में अध्यायों 12 | है विभक्त तपत्रेतायां कृतयुगे परं :ज्ञानमुच्यते] कलौयुगे। यज्ञमित्यूचुदनिमेकं द्वापरे/1] 30 श्लोकों में कहा गया है कि सतयुग में प्राण अस्थिगत, त्रेता युग में मांसगत, द्वापर युग में रुधिर में तथा कलि युग में अन्न में बसते हैं। कलियुग में आचार-विचार-है। धर्म मुख्य परिपालन किसी पापी के साथ शयन, संसर्ग, एक आसन पर बैठना तथा भोजन करना भी पाप कहा गया है, जिसके प्रायश्चित्त के लिए गोव्रत पालन का निदेश है -'गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम्'।]3] पराशर स्मृति भी कौटिल्य से पूर्व की मानी जाती है। कौटिल्य ने पाराशर का उल्लेख केवल राजधर्म के विषय में किया है। यह हो सकता है कि एक ही रचना में आचार, प्रायश्चित, व्यवहार तथा राजधर्म रखने की अपेक्षा दो रचनाओ में रखा हो। अन्य स्मृतियों के राजधर्म तथा व्यवहार सम्बन्धी अंश क्यों लुप्त नहीं हुए। यह माना जा सकता है कि इनके व्यवहार के अंश इसलिए सुरक्षित रह सके कि ये आचार तथा प्रायश्चित के साथ जुड़े हुए थे। आचार तथा प्रायश्चित ने ही उनके व्यवहार के अंशों को सुरक्षित रखा।

काणे महोदय पाराशर स्मृति को प्रथम शताब्दी से पांचवी शताब्दी ई॰ तक मानते हैं। आचार्य सायन माधव ने स्मृति टीका में व्यवहार, राजधर्म , पातक, प्रायश्चित आदि का वर्णन है। अपनी टीका में उक्त विषयों का समावेश करके पाराशर स्मृति को विस्तृत कर दिया है।

जिसका महत्व हिन्दू समाज की दृष्टि से भी कम नहीं है। पाराशर स्मृति में कहा गया है कि शास्त्र हाथ में लिये हुए प्रजा की रक्षा करे, दण्ड भली भांति दे, शत्रु सैन्यों को पराजित करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करे ।

नारद स्मृति

नारद स्मृति का प्रतिपादित विषय व्यवहार है। मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में व्यवहार के अतिरिक्त धर्म, वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था तथा आचार एवं प्रायश्चित आदि का वर्णन मिलता है। परन्तु नारद स्मृति में व्यवहार अधिक परिपक्व दृष्टिगोचर होता है। मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियों की रचना के बारे में स्पष्ट है कि मनुस्मृति प्राचीन है। परन्तु नारद और याज्ञवल्क्य स्मृति पर दृष्टि डॉलने से ज्ञात हो सकता है कि कौन सी स्मृति प्राचीन है।

जॉली के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति का उल्लेख मनु और नारद स्मृति के मध्य में आता है। लेकिन काणे महोदय इस अन्तर को स्वीकारते हुए भी दोनों को समकालीन अथवा नारद को कुछ बाद की मानते हैं।

जॉली नारद स्मृति का समय 300 ई॰ के बाद का मानते हैं, परन्तु काणे नारद स्मृति की रचना प्रथम शताब्दी ई॰ से 300 ई॰ में हुई होगी ऐसा मानते हैं। इस प्रकार नारद स्मृति के रचना काल के विषय में ग्रन्थकारो का एक मत नहीं है।

विषय विभाजन की इस शैली के अनुसार ही नारद स्मृति है। नारद स्मृति में व्यवहार को सीमित रखा गया, क्योंकि उसकी समीक्षा अच्छी तरह से हो जाये। जिस प्रकार याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति के अनुरूप अपनी कृति को तीन भागों में वर्गीकृत करती हुई प्राचीन शैली का परिचय देती है उसी प्रकार नारद स्मृति व्यवहार तक सीमित रखकर नवीन शैली का परिचय देती है। अतः इससे ज्ञात होता है कि नारदस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति के बाद की है। नारदस्मृति में वर्णित विषय:- नारदीय मनुस्मृति व्यवहार दर्शन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें व्यवहार, दर्शनविधि, व्यवहार के निर्णय में साक्षी, राजा द्वारा निर्णय, सभासद का नियम, ऋणसम्बन्धी विवाद निर्णय, विभिन्न प्रकार के विवाद आदि वर्णित हैं।

अंगीरास्मृति

अंगीरास्मृति दो खंडों में है, 1113 श्लोकों में श्राद्ध के साथ एक अध्याय के रूप में व्यवहार करने वाले पूर्व अंगीरस; और बारह अध्यायों में दूसरा उत्तरा अंगिरस है, जो परिसद और प्रयागसिद्धता आदि के विषयों से संबंधित है। अंगरस धर्म के लिए वही परिभाषा देता है जो जैमिनी द्वारा दी गई है और पुराणों और स्मृतियों द्वारा दी गई है। इसमें सब विषयों का विवेचन न करके रजस्वला, जन्म, मरण के सूतक, गौ हत्या, शुद्र का अन्न खा लेना आदि कुछ बातों का ही उल्लेख किया गया है। इसके एक श्लोक से यह प्रकट होता है कि कौन-सा खाद्य-पदार्थ शरीर के भीतर कितने समय तक अपना प्रभाव स्थिर रखता है। सूखा अन्न एक सप्ताह में जीर्ण होता हैं दूषित व्यक्तियों के अन्न ग्रहण करने के सम्बन्ध में एक बात यह भी महत्व है कि जो व्यक्ति दूषित अन्न तो खाकर सन्तानोत्पन्न करता है, तो उसके पुत्र भी दूषित हो जाते हैं क्योंकि सन्तान वीर्य से उत्पन्न होती है और वीर्य अन्न से बनता है।

अङ्गिरा स्मृति में 72 श्लोक है यह जीवानन्द के संग्रह में जो अंगिरा स्मृति है। इसमें अन्त्यज्ञ से भोज्य एवं पेय ग्रहण करने, गौ को पीटने या कई प्रकार से चोट पहुँचाने आदि जैसे अवसरों के प्रायश्चितों का वर्णन है।

दक्ष स्मृति

प्रजापति दक्ष विरचित 'दक्षस्मृति' का प्राचीनतम स्मृतियों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस धर्मशास्त्र के निर्माता महात्मा दक्ष साक्षात् ब्रह्मा जी के मानस.पुत्र हैं। भगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने जब सृष्टि के विस्तार के लिए संकल्प किया, उस समय उनके अपने ही समान दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो मानस.पुत्र कहलाते हैं। महात्मा दक्ष ने अपनी संततियों द्वारा सम्यक् धर्माचरण हो सके, सारी प्रजा आचार.विचार से सम्पन्न हो, अपने नित्य, नैमितिक कर्मों का सम्यक् अनुष्ठान कर सके और सभी परम कल्याणदायक सन्मार्ग के पथिक बन सकें, इस दृष्टि से एक स्वतन्त्र आचारसंहितारूप धर्मशास्त्र का भी प्रणयन किया। दक्ष जी ने जो आचार.संहिता बनायी, वही दक्ष.स्मृति के नाम से विख्यात है। महात्मा दक्ष महान् योगी, महान् तपस्वी तथा दिव्य योग ज्ञान से सम्पन्न थे। अतः योगधारणा से सम्पन्न होकर इन्होंने धर्म तत्व का रहस्य देखा और उसे 'दक्षस्मृति' नाम से अनुग्रथित किया।

दक्ष स्मृति में आश्रम धर्म के पालन करने पर बहुत जोर दिया है और अपनी स्मृति के आरम्भ में ही लिखा दिया है कि ब्राह्मण को दिन'वनाश्रमी' नहीं रहना चाहिए।

दक्ष स्मृति में 7 अध्याय एवं 220 श्लोक है। यह स्मृति वस्तुतः बहुत ही प्राचीन है। विश्वरूप, मिताक्षरा, अपरार्क एवं स्मृतिचन्द्रिका में जो अंश उद्धृत है | सात अध्यायों में निबद्ध दक्ष स्मृति मुख्य रूपेण गृहस्थधर्म, सदाचार एवं अध्यात्म ज्ञान का निरूपण करता है। गृहस्थाश्रम महिमा, सन्ध्यावंदन विधि, नित्यकर्म, धन सम्पत्ति का दान, सदुपयोग, अतिथसत्कार, करणीय एवं अकरणीय कर्म, अध्यात्म, योग निरुपण की विवेचना मिलती है। वह कहते हैं मात्र योग से ही सम्पूर्ण लोक को वश में किया जा सकता है |

पितामह स्मृति

पितामह स्मृति व्यवहार से विशेष सम्बन्ध रखती है। पितामह स्मृति वेद, वेदांग, मीमांसा, स्मृतियाँ, पुराण एवं न्याय धर्मशास्त्रों में गिनी गई हैं पितामह ने बृहस्पति के समान नौ दिव्यों की चर्चा की है। किन्तु याज्ञवल्क्य एवं नारद में केवल 5 ही दिव्य दिये गये हैं। इसका समय 400 से 700 के बीच का माना जाता है। स्मृति चन्द्रिका में पितामह से 28 प्रकृतियों, यथा – धोबी, चर्मकार, आदि की संख्या उद्धृत है | इसमें व्यवहार के 22 पद पाये जाते है | पितामह के अनुसार न्यायालय में लिपिक, गणक, शास्त्र, साध्यपाल, सभासद, सोना, अग्नि एवं जल नामक 8 करण होने चाहिए |

यम स्मृति

धर्मराज यम भगवान् के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम संज्ञा है। यमी (यमुना) इनकी बहन हैं। भगवान् सूर्य का एक नाम विवस्वान् भी है, अतः विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र होने के कारण ये वैवस्वत यम भी कहलाते हैं। यमस्मृति' में केवल 78 श्लोक प्राप्त हैं । मुख्यतः इस स्मृति में प्रायश्चित्त.सम्बन्धी विवरण एवं शुद्धि.तत्व ही प्राधान्येन उपस्थिति हैं तथा धर्मशास्त्रकार महर्षि अत्रि, महर्षि

शातातप और महर्षि उद्दालक जी के वचनों का इन्होंने अपने धर्मशास्त्र में उल्लेख किया है। अनेक निबन्धकारों ने यम के वचनों का विशेष सम्मान के साथ विशेष रूप से प्रायश्चित्त प्रकरण में वर्णन किया है।

जीवनन्द संग्रह में यम स्मृति में 72 श्लोक हैं | इसमें प्रायश्चित तथा शुद्धि का विवेचन है | आनन्दाश्राम संग्रह में यम स्मृति में जिसमें प्रायश्चित, श्राद्ध एवं पवित्रीकरण पर 99 श्लोक हैं | इस स्मृति में धर्मशास्त्र के लगभग सभी विषय पाये जाते है | यम स्मृति में प्रायश्चित एवं शुद्धि का विवेचन किया गया है इस स्मृति के कुछ पद्यांश मनु से मिलते जुलते ही हैं। स्मृति चन्द्रिका आदि ग्रन्थों में यम के लगभग 300 श्लोक उद्धृत है। इस स्मृति में धर्मशास्त्र के लगभग सभी विषय पाये जाते है।

व्यास स्मृति

इस स्मृति में गृहस्थ धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जब तक पुरुष भार्या प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह आधा ही कहा जाताहै। आधा शरीर सर्व कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता इसलिए मनुष्यों को लोक परलोक के साधन के लिए गृहस्थ बनकर संस्त्रीक एकचित होकर धर्म और काम का साधन करना चाहिए इसमें स्त्री का कार्य विशेष महत्वपूर्ण हैं क्योंकि घर की व्यवस्थापक तथा रक्षक वही होती है। इसे स्मृतियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसमें वर्णाश्रम हैं संकलित उपदेश सम्बन्धी धर्म-'धर्मान वर्ण व्यवस्यितान्' (व्यास स्मृति) 4 अध्यायों में 250 श्लोकों में धर्माचरण योग्य उत्तम देश, षोडस संस्कारों की विधि, गुरुमहिमा, गृहस्थ, पातिव्रत, रजोधर्म, गृहस्थ के नैमित्तिक एवं काम्यकर्मादि का तथा सदाचार आदि का तथा चौथे अध्याय के 50 श्लोकों में दानधर्म का महत्व प्रतिपादित है।

संस्कृत धर्मशास्त्र में निहित शिक्षा दर्शन

धर्मशास्त्र एक संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ "पवित्र क़ानून या उचित आचरण का विज्ञान" है। धर्मशास्त्र का सीधा संबंध वैधानिक प्रशासन से नहीं, बल्कि प्रत्येक दुविधापूर्ण स्थिति में आचरण के उचित मार्ग से है। दर्शन से प्राप्त शिक्षा सैद्धान्तिक ज्ञान के रूप में व्यावहारिक सफलता की नींव है। आवश्यक, उपयोगी व उत्कृष्ट रचनात्मक विचार सिद्धान्त के रूप में शताब्दियों तक सुप्त पड़े रहते हैं, जब कभी मानवीय प्रयत्नों से उनको विश्लेषित किया जाता है तो सृजनात्मक मस्तिष्क से प्रेरणा प्राप्त कर वे सहसा ही उदीप्त हो उठते हैं और वर्तमान समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करते हैं। भारतवर्ष दार्शनिक तत्त्व-चिन्तन के लिए सदैव विश्व-विश्रुत रहा है। भारतीय विचारधारा में दर्शन और जीवन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। अतः सम्पूर्ण जीवन को दर्शन का क्षेत्र माना गया है। भारतीय अवधारणा के अनुसार दर्शन का क्षेत्र केवल ज्ञान तक ही सीमित न रहकर समग्र व्यक्तित्व को अपने में समाहित कर लेता है। भारतीय दर्शन का सर्वोपरि रूप जिसने इसकी समग्र संस्कृति को ओत-प्रोत कर रखा है और जिसने इसके समस्त चिन्तनों को एक विशेष प्रकार का आकार प्रदान किया है, इसकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। भारतीय अध्यात्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मानव जीवन में भौतिक और अध्यात्म, इन दोनों का ही समन्वय इस प्रकार किया गया है कि मानव भौतिक जगत् में रहकर भी उच्च जीवन मूल्यों हेतु अग्रसर हो सकता है। अध्यात्म की वेदी पर जीवन की बलि भी नहीं दी गई और भौतिक जीवन के लिए अध्यात्म का तिरस्कार भी नहीं किया गया है। जीवन को सन्तुलन प्रदान करने के लिए ही हमारी संस्कृति में 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' चार पुरुषार्थ निर्धारित किये गये हैं। 'भारतीय जीवन दर्शन' इन्ही पुरुषार्थों की क्रमिक विकास की कहानी है।

संस्कृत धर्मशास्त्र में निहित शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता

प्रासंगिकता का अर्थ है वह विचार या प्रसंग जो किसी समय विशेष में उपादेय हो। प्रस्तुत आलेख में प्रासंगिकता से तात्पर्य है, वे प्रसंग अथवा विचार जो धर्मशास्त्रों में निहित हैं एवं वर्तमान समय में उपादेय हैं। वर्तमान में ऐसी शिक्षा की ही आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जिससे ऐसे नागरिक तैयार किये जा सकें जो बिना किसी दबाब व कुंठा के अपने व्यक्तित्व का विकास करें तथा राष्ट्र व विश्व के निर्माण में अपना योगदान दे सकें। शिक्षा ऐसी हो जो मानव को अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जा सके तथा मानव-मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके। ऐसी शिक्षा केवल मात्र धर्म शास्त्रों में ही निहित है | आधुनिक युग विज्ञान के आश्चर्यजनक विकास व तकनीकी से परिपूर्ण उपलब्धियों का युग है। विज्ञान व तकनीकी ने मिलकर प्राचीन ज्ञान-विज्ञान तथा उसके सिद्धान्तों के समीकरण परिवर्तित कर दिये हैं। आज के युग में अध्यात्म पर विचार करना बहुतों को हास्यप्रद लगता है। आध्यात्मिक विकास के उद्देश्य को काल्पनिक उद्देश्य की संज्ञा दी जाती है। मानवीय मूल्यों पर औद्योगीकरण के प्रहार ने मानव के सर्वतोमुखी विकास की आधारशिला को हिला दिया है | आधुनिकीकरण की आँधी में वह जीवन के वास्तविक लक्ष्य से दिग्भ्रमित हो गया है ।

वर्तमान समय में मानव वाह्य उन्नति के लिए प्रयासरत है । अपनी स्वार्थमूलक भावना के कारण वह परम संचित उपलब्ध ज्ञान, शक्ति एवं संतोष के स्थान पर संघर्ष, प्रतियोगिता एवं विनाश का कारण बन रहा है । आधुनिकता के नाम पर स्वयं को भुलाकर तामसिक एवं पाशविक प्रवृत्तियों से पूर्ण असभ्यता एवं आत्मवनति के गर्त में स्वयं को गिराता चला आ रहा है। अतः वर्तमान में ऐसे दार्शनिक चिन्तन की आवश्यकता परिलक्षित होती है जिसके माध्यम से मानव पाशविक प्रवृत्तियों के घर्षण से बचकर आत्मानुभूति करके निःस्वार्थ कार्य करने की प्रवृत्ति को अपनाकर जीवन के परमार्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

आज का शिक्षित मानव, मानव न रहकर मात्र प्राणी बनकर रह गया है, मानवीय गुणों की रिक्तता एक प्रश्न बनकर सम्पूर्ण मानव जाति को उद्वेलित कर रही है। अतः आवश्यक है कि शिक्षा दर्शन भी कल्याणकारी उदात्त भावना से अभिभूत होकर संकीर्ण विचारों की परिधि को तोड़कर अपने में विस्तृत स्वरूप को समाहित कर ब्रह्माण्ड के समान हो जाए। कोई भी दार्शनिक मानव-जीवन की व्याख्या कर उसके अंतिम उद्देश्य को निश्चित करके ही शान्त नहीं होता अपितु यथा-सामथ्र्य उद्देश्य की प्राप्ति के उपायों पर भी विचार करता है। अनादि काल से मानव ज्ञान, मुक्ति, वैराग्य के शाश्वत मार्गों का अनवरत अनुसंधान कर रहा है। आज भी उसके ज्ञान की तृष्णा समाप्त नहीं हुई है, आज भी वह मुक्ति की इच्छा से व्याकुल है और समस्त समस्याओं, विषमताओं एवं कामनाओं से संबंध-विच्छेद करना चाहता है, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। निःसंदेह यदि उसे सफलता प्राप्त हो जाती तो इन गूढ प्रयासों की चर्चा को ही विराम लग जाता। अतः दार्शनिक विचारधाराओं में ही आधुनिक शिक्षा के संदर्भ खोजने की आवश्यकता है।

उपसंहार

आधुनिक शिक्षाविद् यह अनुभव कर रहे हैं कि जिस तीव्र गति से हमारी सभ्यता का भौतिक पक्ष समृद्धशाली होता जा रहा है उस अनुपात में आन्तरिक पक्ष नहीं। आधुनिक भारत में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें भारतीय जीवन-तत्वों की अधिकता हो ताकि भारत के प्राचीन गौरव व मूल्यों को भी पुनः प्रतिष्ठित किया जा सके। शिक्षा की नींव भारतीय दर्शन के आधार पर खड़ी की जानी चाहिए जिससे बालक में क्षमा, दया, संतोष समता कर्तव्य-निष्ठता, सत्य, अहिंसा, प्रेम के पूर्ण मानवीय गुण विकसित हो

सकें जिनके आधार पर ही 'वसुन्धैव कुटुम्बकम्' की उदात्त भावना को जाग्रत की किया जा सके शिक्षा का यही उद्देश्य होना चाहिए। प्राचीन काल से ही समय-समय पर ऐसे महापुरूष द्वारा यही ज्ञान प्रसारित किया जा रहा है जिनके मार्गदर्शन से संसार को इहलोक तथा परलोक में सुखी व श्रेष्ठ जीवन जीने के सूत्र प्राप्त होते रहे हैं। भारतवर्ष की पावन भूमि पर गुरू, आचार्य, उपाध्याय एवं शिक्षक ऐसे ही महापुरूष हुए हैं जिनका नाम आध्यात्मिक जगत् में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके विचार वर्तमान परिस्थितियों में बालक के चरित्र को सुदृढ़ता व उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। उन्होंने वाह्य आडम्बरों की तुलना में आन्तरिक शुद्धता पर बल दिया है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा राणा प्रसाद (2018) पौराणिक कोश प्रकाशक: ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी संकलन: भारत डिस्कवरी पुस्तकालय |

2. सलूजा, चांद किरण (2006), "शिक्षा, समाज और विकास", परिप्रेक्ष्य-शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ, वर्ष 13, अंक-3, नीपा, नई दिल्ली।

3. सुधाकर शिरीष (2011) : शिक्षा के दार्शनिक आधार : कल्पना पब्लिशिंग हाउस

4. शर्मा,आर.ए.(1986) : शिक्षा अनुसन्धान, मेरठ, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

5. काणे पी॰ वी॰, (1965) : धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड-1, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1965

6. काणे पी॰ वी॰, (1965) : धर्मशास्त्र का इतिहास, खण्ड-1, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1965

7. कुमार नरेन्द्र, (1999) : धर्मसूत्रीय आचार संहिता, विद्यानिधि प्रकाशन, कर्नाटक, पृ0 23

9. वी० स्मृ०,

10.http://ebooks.lpude.in/arts/ma_education/year_2/DEDU501_DEVELOPMENT_OF_EDUCATION_SYSTEM_HINDI.pdf

11. पाठक, आर.पी. (2008)."प्राचीन भारतीय शिक्षा, कनिष्क पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

12. पाणीनिय शिक्षा (1934), चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी.

Corresponding Author:
नेहा व्यास, शोधार्थी
**डॉ.बी.एल.श्रीमाली, शोध निर्देशक
शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड-टू-बी-विश्वविद्यालय) प्रतापनगर उदयपुर (राज.) 2020
ईमेल–……………………………….., *मोबाईल*– ……………..